P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-5*January-2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

श्रीमद्भगवद्गीता में योग

अदिति शर्मा
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
जयपुर

सारांश

गीता योगदर्शन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। योग वह तत्व है जो मनुष्य को इष्वर से जोड़कर उसे परमलक्ष्य की उपलब्धि कराता है। गीता में योग के तीन प्रमुख स्वरूपों ज्ञान, योग, भक्तियोग व कर्मयोग की विस्तृत विवेचना की गई है।

मुख्य शब्द : योग, स्थितप्रज्ञ, समत्व, निष्काम कर्म

प्रस्तावना

विश्व के समस्त धर्मग्रन्थों में श्रीमद्भगवद्गीता का अद्वितीय स्थान है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निःसृत होने के कारण यह ईश्वरीय वाणी है। यह मनुष्य के श्रेयस और अभ्युदय का, उसके लौकिक और अलौकिक, ऐहिक और आध्यात्मिक जीवन प्रक्रिया का सन्दर्भ ग्रन्थ है। यह एक ओर मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य जड़ता को नष्ट कर उसे परम चैतन्य की ओर अभिमुख करती है वहीं दूसरी ओर निष्काम साधक बनने की शक्ति प्रदान कर मानसिक ग्रन्थियों व वृथा बन्धनों से मुक्त कर उसे आत्मचेता बनाती है। श्रीमद्भगवद्गीता सार्वभौम, सार्वलौकिक, सार्वकालिक धर्मग्रन्थ है। यह प्रत्येक देश, जाति, वर्ग, वर्ण व धर्म के लिए है। गीता सत्य से परिचित होने की, उसे अनुभूत करने की श्रेष्ठ कसौटी है। इसका प्रत्येक श्लोक उस अमरत्व की उपलब्धि कराता है, जिसके पश्चात् जन्म–मृत्यु का बन्धन नहीं रह जाता। यह विश्व मनीषा की अद्भुत धरोहर है

गीता में योग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। योग तत्व की प्रधानता के कारण यह योगशास्त्र के रूप में भी मान्य है। योग शब्द 'युज' धातु से बना है जिसका अर्थ हैं संयोग, जोडना अथवा तादात्म्य। जिन उपायों से मनुष्य स्वयं को ईश्वर से जोड़ता है वह योग मार्ग है। शरीर को साधने की प्रक्रिया ही योग है। शरीर को साधने के क्रम में क्रमशः इन्द्रिय और मन भी नियन्त्रित और व्यवस्थित होते चले जाते है। यह ऐसी स्थिति है जिसके द्वारा चित्तवृतियों पर नियन्त्रण स्थापित कर मन को एकाग्र किया जा सकता है। योग वह साधना है जिसे अपनाकर आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार ''योगः कर्मसु कौशलम्''[1] अर्थात कर्मो में कुशलता अथवा पूर्णता ही योग है। यह कर्मबन्धन से छूटने और आवागमन से मुक्ति का उपाय है। आत्मा और परमात्मा के संयोग के सम्बन्ध में योग के अनेक रूपों की अवधारणाएँ मिलती है– यथा ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, ध्यान योग, सांख्य योग तथा सन्यास योग। अब प्रश्न उठता है कि योग का कौन सा मार्ग सर्वोतम है? किस योगमार्ग के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार सुलभ व सरल है? इस विषय पर विविध भाष्यकारों का भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण मिलता है। आदिशंकराचार्य ने गीता के निवृतिमूलक स्वरूप पर बल देते हुए ज्ञान मार्ग को ईश्वर के साक्षात्कार का श्रेष्ठ साधन बताया है। वहीं विशिष्टाद्वैत के प्रणेता रामानुजाचार्य अपने गीताभाष्य में भक्ति को ईश प्राप्ति का एकमात्र और अन्तिम उपाय बताते है। माधवाचार्य, बल्लभ और निम्बार्क भी भक्ति को गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मानते है। आधुनिक युग में लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में कर्मयोग को ईश्वर साक्षात्कार का प्रशस्त साधन माना है।

ज्ञान योग

अद्वैतवाद के प्रणेता आदि शंकराचार्य ने कर्मसन्यासपूर्वक ज्ञान को ही मोक्ष का एकमात्र साधन माना है। गीता के प्रवृति विषयक स्वरूप को निकाल बाहर कर उसे निवृतिमार्गी ज्ञान स्वरूप शांकर भाष्य के द्वारा ही मिला है।[2] उपनिषदों के ज्ञान का विकसित रूप श्रीमद्भगवतगीता में दिखाई पड़ता है। गीता की दृष्टि में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं हैं। ज्ञान वह अग्नि है जिसमें समस्त कर्म जल कर भस्म हो जाते हैं।[3] समस्त कर्मो का अन्त ज्ञान में

ही है। गीता भक्तों में भी ज्ञानी भक्त को ही श्रेष्ठ मानती है। ज्ञान की पूर्णता आत्म स्वरूप को जानने में है। इसी आत्मा के अमरत्व, मोक्ष, पुनर्जन्म, स्थितप्रज्ञ, समत्व योग आदि ज्ञान योग के विविध तत्वों का विवेचन करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि जो भक्त निरन्तर मेरा ध्यान करते है तथा प्रेमपूर्वक भजते है, मैं उन्हें तत्वज्ञान रूपी योग प्रदान करता हूँ।

"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते"।।[4]

ज्ञानयोगी की दृष्टि में संसार असार है। यह दृश्य जगत जो हमें वास्तविक प्रतीत होता है वस्तुतः मिथ्या है, माया है। केवल ब्रह्म ही सत्य है। इस अर्थ में ज्ञान निवृति मार्ग पर बल देता है। संसार को असार तथा आत्मा को परमात्म–स्वरूप समझना ही ज्ञान योग है। आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए श्रीकृष्ण कहते है कि आत्मा अमर है। यह न नष्ट होती है न जन्म लेती है। यह अजन्मा, नित्य और शाश्वत है। शरीर के विनाश का भी आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गीताकार के अनुसार इस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकते, अग्नि इसे जला नहीं सकती, जल इसे गीला नहीं कर सकता और हवा इसे सुखा नहीं सकती।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।[5]

गीता के अनुसार आत्मा ज्ञाता है और इस कारण 'क्षेत्रज्ञ' कही गई है। सांसारिक पदार्थ एवं शरीर नश्वर होने के कारण 'क्षेत्र' है। ईश्वर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में अन्तर्यामी है अतः इनका नियामक और कर्ता है। शरीर और आत्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए गीता मे कहा गया है कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही आत्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करती है।[6]

गीता में पुनर्जन्म एवं कर्मफल के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़े को त्यागकर नये कपड़े पहन लेता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी अपने कर्मो के फल भोगने के लिए नया शरीर धारण करती है। इस प्रकार जीवात्मा अपने कर्मानुसार अनेकों शरीर धारण करती है। ज्ञानयोग के अनुसार समस्त विश्व ईश्वर की रचना है। वह सम्पूर्ण भूतों की आत्मा और चराचर जगत का नियामक है। सभी जीव ईश्वर के अंश मात्र है। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है, जगत मिथ्या है– यह तत्व ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य का मोह समाप्त हो जाता है। ज्ञान योग से युक्त व्यक्ति सभी वस्तुओं में ईश्वर का तथा ईश्वर में सभी वस्तुओं का दर्शन करता है।

'समत्व योग' ज्ञान योग की सबसे बडी विशेषता है। गीता में इसे स्थितप्रज्ञ कहा गया है। जिसकी बुद्धि स्थिर व स्थित हो गई है, वह स्थितप्रज्ञ है। समत्व बुद्धियुक्त पुरूष पाप और पुण्य दोनों को इस लोक में त्याग देता है। समत्व रूपी योग कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। जो कुछ भी कर्म किया जाए, उसके पूर्ण होने व न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम समत्व है। ज्ञानयोगी समदर्शी है। वह विश्व के समस्त प्राणियों को समभाव से देखता है। जो सम्पूर्ण भूतों में वासुदेव को देखता है तथा वासुदेव मे सम्पूर्ण भूतों को देखता है वही समत्व बुद्धियोगी है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहंन प्रणष्यामि स च मे न प्रणष्यति।।[7]

भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि ज्ञान प्राप्ति से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है ''ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिचिरेणाधिगच्छति''किन्तु ज्ञान कौन प्राप्त कर सकता है? ज्ञान के लिए मात्र जिज्ञासा एवं श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिए निर्दिष्ट पथ पर एकाग्र चित होकर तत्परता से अग्रसर होने की लगन आवश्यक है। सम्पूर्ण इन्द्रियों का संयम आवश्यक है। श्रद्धावान, एकाग्रचित, दृढ, आचरण संयतेन्द्रिय पुरूष ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। यही अन्तिम शान्ति की अवस्था है।

भक्ति योग

शाण्डिल्य सूत्र के अनुसार ईश्वर के प्रति 'पर' अर्थात् निरतिषय प्रेम ही भक्ति है। ईश्वर के स्वरूप का प्रेमपूर्वक चिन्तन करते हुए मन को तदाकार करना, उसे अपना सबकुछ मानकर सर्वस्व समर्पण कर देना भक्ति है। श्रीकृष्ण कहते है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यों मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।[8]

सम्पूर्ण धर्मो को त्यागकर केवल मेरी शरण में आ जाओं। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूगाँ। भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकारों की चर्चा करते हुए भक्त के निर्हेतुक, निष्काम और निरन्तर होने की अपेक्षा की गई है ''अहेतुक्यव्यचवहिता या भक्तिः पुरूषोत्तमे।''[9] भक्ति अनिर्वचनीय होती है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, विश्वास तथा भावना भक्ति के प्रमुख तत्व है। भक्ति को प्राप्त करने वाले की समस्त कामनाएँ–वासनाएँ–आकाक्षाएँ नष्ट हो जाती है। भक्त को किसी वस्तु की इच्छा या आसक्ति नहीं रहती। यदि मनुष्य अहम् का त्यागकर, निस्वार्थ प्रेम भाव से भक्ति करे तो उसे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जब कोई मनुष्य भक्ति मार्ग पर चलता है तो उसे इस जन्म में नही तो अगले जन्म में, उसमें नही तो उसके आगे के जन्म में परमेश्वर के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह सब कुछ वासुदेवात्मक है, सर्वत्र वही है और कहीं कुछ नहीं है– इसी ज्ञान से उसे मुक्ति प्राप्त होती है। गीता कहती है कि भक्ति मार्ग पर चलकर निम्न वंष में उत्पन्न हुए अथवा क्षुद्र जीव भी मुक्ति पा जाते है।

श्रीकृष्ण कहते है कि हे अर्जुन! मुझमें मन को लगा, मेरा अनन्य भक्त बन। श्रद्धासहित मेरा निरन्तर पूजन कर, चिन्तन कर और मेरे को ही नमस्कार कर। इस प्रकार मेरी शरण में हुआ, आत्मा को एकीभाव से स्थित कर तू मुझे परमात्मा ही प्राप्त होगा।

मन्मना भव मदभक्तों मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण।। [10]

भक्ति पथ पर अग्रसर होने के लिए श्रीमदभगवतगीता में कई साधन बताये गये है सर्वप्रथम योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते है

1. ''मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय'' अर्थात मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा।

2. अगर उक्त उपाय में असमर्थ हो तो ''अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धन्जंय'' हे अर्जुन योग के अभ्यास द्वारा मुझे प्राप्त होने की इच्छा कर।
3. यदि अभ्यास करने में भी असमर्थ है तो ''मत्कर्मपरमो भव'' केवल मेरे लिए कर्म कर। साधना पथ रूपी मेरी आराधना में तत्पर हो जा।
4. और यदि इसे भी नहीं कर सकता तब ''सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरू यतात्मवान्''अर्थात सम्पूर्ण कर्मो के फल का त्याग कर, लाभ–हानि की चिन्ता छोड़कर मेरी शरण में आ जा। तिलक के अनुसार गीता प्रतिपादित भक्तिमार्ग कर्मप्रधान है और उसका मुख्य तत्व यह है कि परमेश्वर की पूजा न केवल पुष्पों या वाचा से ही होती है अपितु वह स्वधर्मोक्त निष्काम कर्मो से भी होती है।[11]

भक्ति योग नामक बारहवें अध्याय में अर्जुन के द्वारा उत्तम योगवेत्ता एवं उत्तम मार्ग के बारे में पूछने पर श्रीकृष्ण कहते है कि इन्द्रियों को वष में रखते हुए अव्यक्त परमात्मा के स्मरण का पथ कठिन है। इसलिए तू सम्पूर्ण कर्मो को मुझमें अर्पण कर, अनन्य भक्ति से मेरा चिन्तन कर। सगुण भक्त योगी का मैं शीघ्र ही संसार सागर से उद्धार कर देता हूँ। अतः भक्ति मार्ग श्रेष्ठ है। गीता में चार प्रकार के भक्त बताये गये है–आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी। इनमें ज्ञानी भक्त भगवान को सर्वाधिक प्रिय है। भगवान कहते हैं कि जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन व इन्द्रियों को वश में किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है ऐसा ज्ञानी मन–बुद्धि वाला भक्त मुझे प्रिय है।[12] इसी क्रम में गीता में अवतारवाद की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। श्रीकृष्ण के अनुसार धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होने पर मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ। सज्जनों का उद्धार करने और दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म की स्थापना करनेके लिए मैं युग–युग में प्रकट होता हूँ।

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधूनां विनाषाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थायसम्भवामि युगे–युगे ।।[13]

भक्ति तत्व की विशेषता है कि मनुष्य की योग्यता, उसका मोक्षत्व उसके व्यवसाय जाति अथवा श्रेष्ठता पर अवलम्बित नहीं है अपितु वह तो उसके अन्तःकरण की शुद्धता पर अवलम्बित होता है। भक्त के गुणों का उल्लेख करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते है कि जो सम्पूर्ण भूतों में द्वेषभाव से रहित है, जो करूणा से युक्त और दयालु है, ममता व अहंकार से रहित है वह भक्त मुझे (भगवान) प्रिय है। जो निंदा व स्तुति में समान है, किसी भी प्रकार शरीर निर्वाह में सन्तुष्ट है, जो शुद्ध है, सर्वारम्भों का परित्यागी है ऐसा भक्तिमान पुरूष मुझे प्रिय है। जो भक्त एकाग्रचित होकर, अनन्य भक्ति भाव से मुझे भजता है, मैं उसे जन्म–मरण से मुक्त कर देता हूँ।

कर्म योग

गीता कर्मयोग के दर्शन का अद्वितीय ग्रन्थ है। कर्मयोग का तात्पर्य अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करने से हैं। कर्मयोग एक ऐसी विधा है जिससे आप अपने सांसारिक कर्मों से विरत भी न हो और कर्म के फलस्वरूप मोह अथवा फलासक्ति में रत भी न हो। श्रीकृष्ण कर्तव्यों को श्रेष्ठ रूप में पूर्ण करने को ही योग मानते है। कर्म अनिवार्य है। इस संसार में रहते हुए मनुष्य के लिए कर्म का पूर्णतः त्याग करना असम्भव है। श्रीकृष्ण के अनुसार कर्मसन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है, सुगम है–

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्वयेदकर्मणः।।[14]

कृष्ण कहते है कि हे अर्जुन, तू स्वधर्म रूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तो तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा। बिना कर्म जीवन सम्भव नहीं है। सभी धर्म मोक्ष के लिए किसी न किसी कर्म का निर्देश करते है। कर्म एक ऐसी क्रिया है जिसका एक बार आरम्भ हो जाये तो वह अखण्ड रूप से निर्बाध जारी रहता है और सृष्टि को अन्त होने पर भी बीज रूप में बना रहता है।[15] कर्म किसी भी सत्ता से बाहर नहीं है। वायु, जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सभी कर्म की गति से ही चालित है। इस अर्थ में गीता प्रवृतिवादी है। इसमें एक महत्वपूर्ण संदेश अन्तर्निहित है कि कर्म, अकर्म से श्रेष्ठ है। कर्म अपरिहार्य है और लोक संग्रह की दृष्टि से उसकी आवश्यकता भी बहुत है। लेकिन कर्म कैसा हो? भगवान् कहते है कि निष्काम कर्म श्रेष्ठ है। निष्काम कर्मयोगी वह है जो सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय की भावना से ऊपर उठकर कर्म करता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि।।[16]

उक्त भावों को समान समझकर निष्काम कर्म करने से मनुष्य पाप से कलुषित नहीं होता। निष्काम कर्म तृष्णारहित, कामना रहित, फलासक्ति रहित कर्म है। ऐसा कर्म करने से बन्धन नहीं होता।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।[17]

श्रीकृष्ण कहते है कि हे अर्जुन, कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है, उसके फलों में नहीं। कर्म के त्याग की अपेक्षा कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। स्वयं को अकर्ता मानते हुए, अंहकार रहित होकर जो व्यक्ति बिना फल की आषा के कर्म करता है वही सच्चा कर्मयोगी है। अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण संसार को उपदेष दे रहे है कि मनुष्य कर्म करने में ही स्वतन्त्र है, उसका फल भोगने में नहीं। निष्काम कर्म नैष्कर्म्य नहीं है अपितु ईश्वरार्थ कर्म है। इसमें कर्मो का नहीं वरन कर्मफल का त्याग किया जाता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए सन्यास लेना आवश्यक नहीं है। यदि मनुष्य संसार में रहकर कर्मफल का त्याग करते हुए जीवन जिये तो उसे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। निष्काम कर्मयोग द्वारा व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

12वें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते है कि मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है। ज्ञान की अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है क्योंकि ध्यान में इष्ट रहता है और ध्यान से भी सम्पूर्ण कर्मों के फलों का त्याग श्रेष्ठ है। इस त्याग से तत्काल परमषान्ति प्राप्त होती है।[18]

उद्देश्य

आज मनुष्य भौतिकवाद की ओर उन्मुख होता जा रहा है। समस्याओं से घबराकर जीवन के प्रति नैराश्य की भावना घर करती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में योग जीवन जीने का समन्वयकारी मार्ग दिखाता है। मनुष्य को समस्याओं से जूझनें का साहस प्रदान कर उनके समाधान का सर्वोत्तम मार्ग बतलाता है। हमारे चिन्तन एवं जीवन दर्शन को उर्ध्वगामी बनाता है। मनुष्य श्रेष्ठ कर्म कैसे करे यह सिखाता है। यह वह जीवन पद्धति है जो मानव को ईश्वर से जोड़कर उसे दैवीय जीवन की ओर अग्रसर करती है।

निष्कर्ष

योग की श्रेष्ठता

योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनुसार संसार के संयोग–वियोग से रहित अनन्त सुख का नाम योग है। परम शान्ति एवं परमतत्व परमात्मा के मिलन का नाम योग है। परमात्म प्राप्ति योग की पराकाष्ठा है। योग प्राप्ति के लिए श्रीकृष्ण '''युक्तहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु' का मार्ग बतलाते है। अर्थात् दुःख का नाश करने वाला यह योग युक्त आहार, युक्त विहार, कर्मों में उपयुक्त चेष्टा तथा युक्त शयन व जागरण करने वाले का ही पूर्ण होता है। अर्जुन को सम्बोधित करते हुए मनुष्य मात्र के लिए वासुदेव कहते हैं कि जो कुछ तू आराधना करता है मुझे समर्पित कर। जब सर्वस्व का नाश हो जाएगा तब योग से युक्त हुआ तू कर्मो के बन्धन से मुक्त हो जाएगा और वह मुक्ति मेरा ही स्वरूप है। योग के ऐश्वर्य पर प्रकाश डालते हुए गीता कहती है कि तपस्वी से योगी श्रेष्ठ है, ज्ञानी से भी योगी श्रेष्ठ है और कर्मी से भी योगी श्रेष्ठ है अतः हे अर्जुन तू योगी हो।

तपसिमयोऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यष्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।[19]

गीता में योग को 'समत्व' भी कहा है। ऐसा व्यक्ति जो समय, काल और परिस्थिति में समान रहे– योगी है। योगी समदर्शी है, समभावी है। 'स्थितप्रज्ञ' भी योगी की ही एक संज्ञा है। जिसका सभी अवस्थाओं में ईश्वर से तादात्म्य रहे, जिसे सोते–जागते, खाते–पीते सभी क्रियाओं में, पशु–पक्षी, ब्राह्मण–शूद्र सभी प्राणियों में तथा जाग्रत–स्वप्न–सुशुप्ति सभी अवस्थाओं में ईश्वर दिखाई पडे, वही योगी है। स्थितप्रज्ञ है। इस प्रकार योग दैवीय शक्ति से अविच्छिन्न तादात्म्य रखता है।

तपस्वी, ज्ञानी तथा कर्मी वे है जो अपने मार्ग पर चल रहे है किन्तु योगी वह है जो गन्तव्य तक पहुँच चुका है। ज्ञानी नहीं ज्ञानयोगी बन, केवल कर्मी नहीं कर्मयोगी बन तभीमानव जीवन की सार्थकता एवं पूर्णता है। महर्षि अरविन्द के शब्दों में गीता हमें कर्मों को कामनारहित होकर करता ही नहीं सिखाती अपितु सर्वधर्मों का त्यागकर दैवी जीवन का अनुसरण करना, एक मात्र परम में शरण लेना सिखाती है और यही वास्तविक योग है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *श्रीमद्भगवतगीता, 2/50 गीताप्रेस, गोरखपुर, 2015।*
2. *गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, ले.बाल गंगाधर तिलक, अनुवादक माधवराव सप्रे चित्रषाला स्टीम प्रेस, पूना, 1918, पृ. 14*
3. *श्रीमद्भगवतगीता ''सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते''*
4. *वही, 10/10*
5. *वही 2/23*
6. *वही, 2/20 न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।*
   अजो नित्यः शाष्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।
7. *वही, 6/30*
8. *वही, 18/66*
9. *भागवत पुराण, 3.29.12*
10. *श्रीमद्भगवतगीता, 9/34*
11. *गीतारहस्य, पृ. 437*
12. *श्रीमद्भगवतगीता, 12/13.14*
13. *श्रीमद्भगवतगीता, 4/7.8*
14. *वहीं, 3/8*
15. *गीता रहस्य, पृ. 265*
16. *श्रीमद्भगवतगीता,2/38*
17. *वही, 2/47*
18. *वही, 12/12*
19. *वही, 6/46*